वीर संवत् २४९२, माघ शुक्ल ३, सोमवार

दि. २४-१-१९६६, ढाल-२, गाथा ५, ६ प्रवचन नं.-७

दूसरी ढाल। चार गाथा हुई, पाँचवी (गाथा)। '**अजीव और आस्रवतत्त्व का विपरीत श्रद्धान।**'

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान;
रागादि प्रगट ये दुःख देन, तिनही को सेवत गिनत चैन।।५।।

एक गाथा में दो की भूल (दिखायी है।) '**(मिथ्यादृष्टि जीव)...**' अज्ञानी। अपना चैतन्यस्वरूप कभी जन्मता नहीं और कभी मरता नहीं। चैतन्य कभी जन्मता नहीं और मरता भी नहीं - ऐसे आत्मा को नहीं जानता हुआ '**शरीर के उत्पन्न होने से अपना आत्मा उत्पन्न हुआ - ऐसा मानता है।**' इसमें दृष्टान्त दिया है, देखो ! इसमें है। लड़का जन्मा न ? शरीर ऐसा हुआ, इसलिए मैं जन्मा ऐसा। शरीर उत्पन्न होने से मैं उत्पन्न हुआ - इस प्रकार अज्ञानी, अजीव को अपना स्वरूप मानता है - यह अजीव की भूल है - ऐसा कहना है। उसमें यह

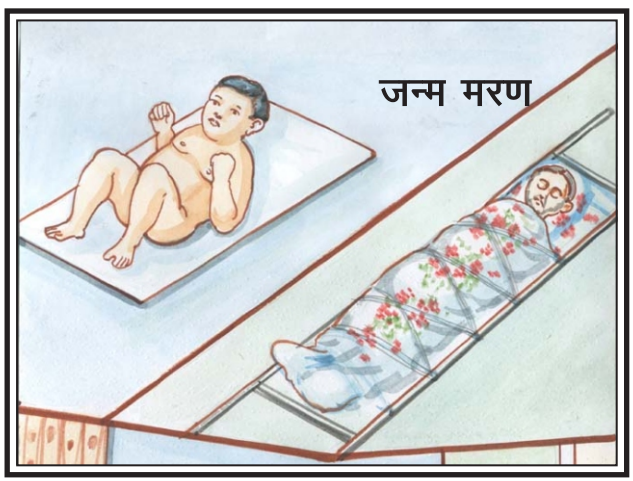

आया था। आत्मा पर को - देह को माने, आत्मा देह में स्वयं को माने तो यह जीव की भूल है। यह देह उत्पत होने से मैं उत्पन्न हुआ - यह माने, वह अजीव की भूल (है।) कुछ समझ में आया ?

शरीर के उत्पत होने से अपना... है न ? '**अपनी उपज...**' स्वयं तो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है, आनन्द है; उसे-आत्मा को जन्म और मरण नहीं है। संयोगी चीज़ का - शरीर का योग होने पर मैं उत्पन्न हुआ शरीर का वियोग होने पर मैं मर गया। इसमें दोनों दृष्टान्त दिये हैं, देखो ! अर्थी बाँधी है न ? उसमें मुर्दा किया है, शरीर किया है। यह उसमें दिया है। पुराने में दिया है, नये में दिया है। यह जन्म का दृष्टान्त है और यह मरण का है - दो। है ? भाई ! है या नहीं इसमें ? मैं मर गया। मरते हुए गहरे-गहरे उतरता है न ? मरने के काल में ऐसे मानो आत्मा उतरता हो अर्थात् मानो ऐसे अभाव हो जाता हो, सारा शरीर दुर्बल पड़ जाता है, अन्दर नसों में चर्बी घट जाती है। ऐसा गहरा-गहरा लोग नहीं कहते ? मरते गहरा-गहरा उतर जाता है। यह दूसरा सूंघता है न ? तब उसे ऐसा लगता है कि गहरे-गहरे उतरता है। गहरा कहाँ उतरे ? वह तो है वहाँ है परन्तु पर के कारण मानो पर उत्पन्न हुआ तो मैं उत्पन्न हुआ और गहरे-गहरे उतरे मानों मेरा ही अभाव हो गया। अभाव होता जाए। उसे आत्मा पर से भित ज्ञानानन्द है, उसमें उपजना नहीं और मरना भी नहीं - ऐसा न मानकर इस देह में उपजा, वह मैं उपजा, देह में सब मन्द पड़ गया। यह सब ऐसा हो गया और यह मेरा अर्थात् मैं मर गया - यह अजीवतत्त्व की बड़ी भूल (है।)

'**शरीर का नाश होने से...**' अपना नाश '**अथवा मरण हुआ - ऐसा मानता है...**' यह अजीव की भूल संक्षेप की, निशेष स्पष्टीकरण अन्दर अर्थ में करेंगे। '**राग-द्वेष-मोह इत्यादि (प्रकट)...**' प्रकट-ऐसा शब्द (प्रयोग किया) है। शुभ-अशुभ, राग-द्वेष और पर के प्रति मेरे(पने का) मोह, यह '**स्पष्टरूप से (दुःखदेन) दुःख देनेवाले हैं...**' शुभ-अशुभराग और यह मेरा-ऐसा मिथ्यात्वभाव, यह प्रकट दुःख देनेवाले हैं, तथापि '**उनकी सेवा....**' करता है, अर्थात् उनमें ही एकाग्र होता है। पुण्य और पाप के भाव की सेवा करता है। सेवा अर्थात् उनकी सेवा करे, उनमें ही एकाग्र हो, उनसे मुझे लाभ होता है - ऐसा माने, उसे आस्रवतत्त्व की भूल होती है। देखो ! यह बड़ी भूल।

अजीव उत्पन्न होने से मैं उत्पन्न हुआ और इन पुण्य-पाप के भाव में एकाग्रता (करता है)-

यह सेवन करने योग्य है, भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप सेवा करने योग्य नहीं है (-ऐसा मानता है।) यह संवर-निर्जरा में आयेगा। यही सेवन योग्य है। शुभ और अशुभ ठीक है, हित है, श्रेय है, उसमें से ही मेरे आत्मा की सब सम्पदा प्राप्त होगी। ऐसे शुभाशुभ राग में दुःख देनेवाले शुभ और अशुभपरिणाम दोनों है, तथापि उन्हें अपना भाव मानकर सेवा करता है।

'**सेवा करता हुआ (चैन) सुख मानता है।**' फिर ऐसा कहा है न ? सुख मानता है। शुभाशुभभाव दुःखरूप है, अहितकर है, हेय करने योग्य है; दुःख के देनेवाले को सुखरूप मानता है। कहो, इसमें समझ में आया ? यह शुभ और अशुभराग होता है, वह दुःख देनेवाला है।

मुमुक्षु :- शुभ से तो लाभ है, उससे तो स्वर्ग मिलता है।

उत्तर :- स्वर्ग मिला, इससे आत्मा को क्या हुआ ? यह कहेंगे। वेष बदला, शरीर बदला। अघाति के कर्म का वेष पलटा - इसमें आत्मा को क्या ? समझ में आया ? शुभभाव से वह तो बन्धन में आयेगा। बन्धन के फल में शुभ का अनुकूल फल देखकर उस बन्ध में रचेगा। यह बात बन्ध में आयेगी। यहाँ तो अभी मात्र शुभ या अशुभ विकल्प जो हैं, वे दुःख के देनेवाले हैं, इसलिए आत्मा के अमृत से विपरीत अवस्थारूप विकार है। आत्मा अमृतस्वरूप शान्त, आनन्द (स्वरूप) आत्मा है, तब उससे विपरीत पुण्य-पाप का भाव दुःखरूप है। उसे सुखरूप चैन मुझे मजा है (- ऐसा मानता है)। शुभभाव में मजा और अशुभभाव में मजा (है) ऐसा माननेवाले आस्रवतत्त्व की विपरीत श्रद्धा करते हैं। कहो, इसमें समझ में आया ? कहाँ गये ? भाई ! इसमें समझ में आया ?

कहते हैं, शुभ और अशुभ और मोहभाव प्रगट दुःखदेन है, ऐसा शब्द प्रयोग किया है। '**प्रकट दुःखदेन**' ऐसा। उनमें ज़रा भी शान्ति नहीं है; शुभ या अशुभभाव में ज़रा भी शान्ति नहीं है, तथापि उन्हें सुखरूप (मानता है।) चैन लगती है, मजा लगता है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, काम-क्रोध, मान, माया, लोभ भाव करके मजा... मजा, है; हमारे मज़ा है। मूढ़ है, कहते हैं। दुःखरूप भाव को सुखरूप मानना, मूढ़ है। ऐसे ही शुभभाव का भाव, वह भी विकारभाव स्वयं वर्तमान दुःखरूप है।

(समयसार) कर्ता-कर्म (अधिकार की) ७२वीं गाथा में आ गया है। आस्रवभाव-पुण्य-

पाप स्वयं वर्तमान दुःखरूप भाव है और दुःख का कारण है, उसे होंश करके उसकी सेवा करता है। उसे सुखरूप मानकर रुचि से - प्रीति से उसकी सेवा करता है, इसका नाम आस्रवतत्त्व में मिथ्यादृष्टिपना है। कहो, इसमें समझ में आया ? लड़के पुस्तक लाये हैं या नहीं ? देखो ! इसमें सूक्ष्म बात है।उसमें गेंद खेलते हैं या नहीं ? उसमें राग होता है और राग में मजा माने, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। हें ? क्या कहा ? कहते है कि, अशुभराग होता है। किसमें ? इसमें बाह्य के उसमें (खेल में) अशुभराग होता है। उस अशुभराग में चैन मानता है, मजा मानता है, हर्ष मानता है। कहते हैं कि, वह मूढ़ है, भाई ! आज आये है। (मुझे कहाकि) हिम्मत दो। ऐसे अस्ति से बोले; परन्तु इसका अर्थ कि हिम्मत हार गया हूँ - ऐसा बोले। ऐसा था न ? मैं समझ गया। हिम्मत दो, कहे। बहुत उलाहना मिलता है न, इसलिए सीधी भाषा ऐसी कि हिम्मत हार गया हूँ। किसमें से हिम्मत हारना ?

पाप का भाव आवे, उसे मजा मानना, उस दुःखदायक (भाव को) सुखदायक मानना, वह मूढ़ता है - ऐसा कहते हैं। प्रतिकूलता में, प्रतिकूलता के कारण नहीं; स्वयं के कारण से हुआ पापभाव, उसमें मजा मानना कि यह मुझे ठीक है, इसका नाम मिथ्यादृष्टि असत्य पाप का सेवन है। कठोर बात ! समझ में आया ?

'**भावार्थ :- अजीवतत्त्व की भूल :- मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है कि शरीर की उत्पत्ति (संयोग) होने से मैं उत्पन्न हुआ...**' शरीर का संयोग होने से मैं जन्मा। जन्मे तब शरीर का तो संयोग होता है, कहीं आत्मा नहीं जन्मता। '**और शरीर का नाश (वियोग) होने से मैं मर जाऊँगा, (आत्मा का मरण मानता है।)**' जहाँ शरीर छूटने लगे, बस ! अब मैं मर गया। अब हम मर गये। कौन मरे ? मर गया - ऐसा बोले। अब हम मर गये। कौन मरे इसमें ? शरीर मरे या आत्मा मरे ? मरे कौन ? यहाँ तो शरीर का वियोग होता है - इतनी बात है। मरता तो न शरीर है, न आत्मा मरता है। शरीर के वियोग से आत्मा की मृत्यु माने, वह मूढ़ जीव, अजीवतत्त्व की बड़ी भूल सेवन करता है। समझ में आया कुछ ? अथवा आत्मा का मरण मानता है।

'**धन, शरीरादि जड़ पदार्थों में परिवर्तन होने से...**' उसमें ऐसा था कि यह परिवर्तन मैं

करता हूँ। यहाँ परिवर्तन होने पर वह परिवर्तन अपने में मानता है। जैसे, शरीर के उत्पन्न होने से अपना उत्पन्न होना मानता है; वैसे शरीर की अवस्था पलटने से मैं वृद्ध हो गया, मैं यह हो गया, मेरे सब हथियार हल्के पड़ गये। शरीर व्यवस्थित न हो, वहाँ (ऐसा मानता है।) समझ में आया ? मूढ़ है। भगवान आत्मा तो ज्ञानानन्द स्वरूप है। शरीर की कमजोरी से कहीं आत्मा को कमजोरी नहीं आती। शरीर की अवस्था के परिवर्तन से कही आत्मा में परिवर्तन नहीं होता। कहो, भाई !

भगवान आत्मा ज्ञानानन्द अनादि-अनन्त स्वरूप है। उसे बाह्य के परिवर्तन से स्वयं का परिवर्तन / पलटना मानना, वह अजीव की बड़ी भूल है। अजीव में परिवर्तन होने से यहाँ परिवर्तन मानना, वह बड़ी भूल है। वहाँ शरीर में, आबरुमें, कीर्ति में, मकान में, स्त्री-पुत्र में परिवर्तन होवे, उसमें तुझे क्या हो गया ? समझ में आया ? पैर टूटा, पैर कम हो गया, ऐसा हो गया, लूला हो गया, लो ! तब कहे, मैं लूला हो गया। भाई ! आहा...हा...! है ? कान टूटा तो मैं टूट गया, नाक टूटा तो मैं टूट गया, आँख फूटी वहाँ मैं फूट गया। आँख जरा फूटे न ? हाय... हाय... हम तो भई अन्धे हो गये अब। शरीर की अवस्था के परिवर्तन से आत्मा में परिवर्तन मानता उसे अजीव की मिथ्यादृष्टि की भूल कहते हैं। समझ में आया ?

'**शरीर की उष्ण अवस्था होने पर मुझे बुखार आया...**' यह शरीर में उष्णता आती है। इस शरीर में - यह रजकण मिट्टी है, उसमें एक स्पर्श नाम का गुण है। इस गुण के कारण उसमें उष्ण अवस्था होती है। वह उष्ण अवस्था शरीर में होने पर आत्मा 'मुझे बुखार हुआ' - ऐसा मानता है। उसकी अवस्था अपने में मानी, वह मिथ्यादृष्टि, अजीव को भूलता है। समझ में आया ? सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ, जिन्होंने एक सैकण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीनलोक प्रत्यक्ष देखा, वे भगवान कहते हैं कि इस शरीर में जो उष्णता होती है, वह इस रजकण के स्पर्शगुण की एक पर्याय है। वह पर्याय होने पर मुझे हुई - ऐसा माना है, उसने अजीव को जीव माना है। वह अजीव की भूल है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया कुछ ?

'**शरीर में क्षुधा...**' लगने पर मुझे क्षुधा लगी। मर गया। मुझे इतनी भूख लगी है, हाँ ! ऐसा नहीं कहते ? हे ? झट दो, ऐसी भूख लगी है। परन्तु किसे ? शरीर की क्षुधा। भगवान आत्मा तो

अरूपी आत्मघन है। आत्मा तो अरूपी ज्ञानघन है, उसे क्षुधा नहीं होती। शरीर की क्षुधा को अपनी क्षुधा मानना यह अजीव की भूल है। मिथ्यादृष्टि को अजीवतत्त्व की भूल है। आहा...हा...! वीतराग के नौ तत्त्व भगवान ने कहे हैं। जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। इसे यथार्थ नवतत्त्व का पता नहीं होता, इसे धर्म होगा कहाँ से ? धूल में धर्म बाहर से होता होगा ? समझ में आया ? कहते हैं, शरीर की क्षुधा की अवस्था होने पर मुझे हुई; तृषा अवस्था (हुई) मुझे कण्ठ में खुस्की पड़ती है, हाँ। आत्मा को खुस्की पड़ती होगी ?

मुमुक्षु :- डॉक्टर...।

उत्तर :- डॉक्टर को होंश कब था वहाँ ? नहीं, डॉक्टर ?

मुमुक्षु :- (उन्हें) आत्मा नाम की चीज नहीं

उत्तर :- ठीक, इसलिए फिर मानते नहीं। आत्मा ही पूरा उड़ाया, आत्मा नाम की चीज नहीं होती, फिर यही सब है। यहाँ यही कहते हैं।

क्षुधा, तृषा अवस्था होने पर मुझे क्षधा, तृषा हुई। शरीर की अवस्था में क्षुधा, तृषा होने पर, जैसे शरीर के उत्पन्न होने पर मैं उत्पन्न हुआ; वैसे ही शरीर की क्षुधा, तृषा होने पर मुझे क्षुधा, तृषा हुए। यह मिथ्या, अजीवतत्त्व की मिथ्याश्रद्धा की भूल है। ऐसा मिथ्यात्व जहाँ हो, वहाँ उसे धर्म किसी प्रकार नहीं हो सकता। ये सामायिक और प्रोषध करनेवाले इसप्रकार माने तो वे भी मिथ्यादृष्टि हैं। उन्हें सामायिक प्रौषध है ही नहीं, भाई !

मुमुक्षु :- बुखार आये तो कहे मुझे बुखार आया।

उत्तर :- बुखार किसे आवे ? धूल को। बुखार अर्थात् क्या ? उष्ण; स्पर्शगुण की एक उष्ण पर्याय। बुखार अर्थात् क्या ? बुखार की व्याख्या। बुखार (शब्द) वाचक, उसका वाच्य क्या ? यह रजकण-परमाणु है, उनमें एक स्पर्शन नाम की शक्ति है, गुण है, उसकी बुखार एक अवस्था है। वह अवस्था जड़ में - परमाणुओं से होती है। उसके बदले कहता है - मुझे बुखार आया - मूढ़ है।

मुमुक्षु :- बोले तो कैसे ?

उत्तर :- बोले तो कहा न कि पहिचान के लिए कहते हैं। वह नहीं कहता था ? एक राजा का डॉक्टर था। 'रतलाम' का डॉक्टर था। हें ? वह 'रतलाम' का डॉक्टर आया था न फिर (राजा

को) आमदनी तो बारह महीने में दस लाख की साधारण, परन्तु उसे बुखार आया - ऐसा नहीं कहा जाता; तब क्या (कहा जाता) ? अन्नदाता ! आपके दुश्मन को बुखार आया है तो वैद्यको बुलाऊँगा ? आपके दुश्मन को बुखार आया - ऐसा बोला जाता। आपको बुखार (आया है ऐसा) बोला जाता है ? ... सुन नहीं सकता। राजा इसलिए ! हम राजा, महाराजा। ....! ऐ...दरबार ! यह दरबार तो बनियों के दरबार हैं। वे तो जगीरदार। समझ में आया ? लो ! वे कहते, हाँ ! यहाँ आये थे। हमारे दरबार को बुखार आवे तो ऐसा नहीं कहा जाता। अन्नदाता ! आपको बुखार आया - ऐसा नहीं कहा जाता। तब क्या कहा जाता है ? अन्नदाता ! आपके दुश्मन को बुखार आया है, बुखार आया है, तो किसी वैद्य को बुलाऊँगा ? ऐसा बोला जाता है। आहा...हा...!

मुमुक्षु :- दरबार को बीमार कहा जाता है ?

उत्तर :- दरबार बीमार नहीं। आत्मा ही दरबार है, वह कहाँ दरबार था ? आहा...हा...!

मुमुक्षु :- दवा कौन पिलाये ?

उत्तर :- कौन पिलाये ? शरीर में पड़े, उसे दवा पिलाये ऐसा कहा जाता है। राजा मरे तब मर गये - ऐसा नहीं कहा जाता, सो गये हैं - ऐसा कहा जाता है। बड़े राजा, महाराजा, करोड़-करोड़ पाँच करोड़, दस करोड़ की आमदनी हो, उनके ऐसे बड़े बंगले, हीरा-माणिक से श्रृंगारित हो; अब उन्हें ऐसा नहीं कहा जाता कि मर (गये हैं)। बाहर में यह आवाज नहीं निकलती। महाराज साहब सो गये हैं, बस ! इतना बाहर कहे। तब लोग समझ जाते हैं कि मर गये हैं, ऐसा। अरे...अरे..! अभिमान, वह भी कितना ? (यह तो) एक साधारण राजा, दस लाख की आमदनी वाला, 'रतलाम'का।

वे तो चक्रवर्ती, माण्डलिक राजा, महाराजा, हजारों बड़े श्रेणिक राजा जैसे जिनको चामर (पंख) ढोलते हैं - ऐसे राजाओं को भी सम्यग्दर्शन होता है। वह जानते हैं कि यह जड़ की अवस्था है, हमें इसमें कुछ नहीं; हम तो उसके जाननेवाले हैं - यह कहना (भी) व्यवहार है, हमारा मानना - यह तो बात ही नहीं है। आहा...हा...! वे राग में पड़े, छियानवे हजार रानियों के वृन्द में पड़े दिखलायी दै। अरे...! हम तो हमें देखनेवाले हैं। आहा...हा...! समझ में आया ?

इनके देखनेवाले कहना, यह व्यवहार (है) तो वे हमारे हैं - यह बात तो उनमें है नहीं। आहा...हा...! ऐसे देखो तो बड़े चक्रवर्ती ऐसे दिखे। सोलह हजार देव सेवा करते हों; समझ में आया ? और उनकी ऋद्धि, उनके पुण्य फेलाये समावे नहीं, इतना उनका पुण्य। यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं। हम तो अपनी आनन्द ऋद्धि, शान्ति ऋद्धि, एक-एक ऋद्धि की अनन्त शक्ति ऐसा तत्त्व-आत्मा है। हम उनमें कही नहीं आये, वे हमारे में नहीं आते। कुछ समझ में आया ?

कहते हैं कि यह मुझे क्षुधा, तृषा (होती है।) '**शरीर कटने से मैं कट गया...**' नाक फट जाए तो कहे, मैं नककटा हूँ। ऐसा मानता है न ? मैं तो पहले से ही नककटा हूँ, भाई ! मेरी एक आँख पहले से फूटी है। मेरी एक आँख फूटी हूई है (- ऐसा कहता है)। (आँख) शरीर की है या तेरी है ? कान में होता है न ? कितने ही कनकटा वे ऐसा ही मानते है कि मैं ऐसा हूँ, बस ! समझ में आया ? वह क्या कहलाता है ? गाँठ होती है, बड़ी गाँठ होती है। तुम्हारे भाई को इतनी बड़ी रसोली थी न ? ऐसा हो, छोटा-छोटा वह होते है न ? मस ! उसे ऐसा ही हो जाता है। मेरे दो वर्ष बाद मस हुआ। मुझे मस हुआ है। यहाँ मोटा हो जाता है, यहाँ मोटा हो जाता है। यहाँ इतना मोटा था। वह मसा हो जाए, फिर वह कटे नहीं, काटे तो खून निकलता है। फिर ऐसे का ऐसा रहे। देखो न ! भाई को आँख में है न जरा ? आँख के ऊपर ज़रा मसा बढ़ जाए, पलकों के ऊपर; कटे नहीं, मिटे नहीं। वह तो जड़ की दशा है। समझ में आया कुछ ? आहा...हा...! यह पलकों में मसा होता है। है न ? यह पलकें है न ? उसमें से इतना बढ़े, ऐसा टूकड़ा बढ़ जाता है, मूँग के दाने जितना। भाई को है। कुछ समझ में आया ? वह जड़ की अवस्था है, आत्मा नहीं, परन्तु उसे ऐसे ही मानता है। उसे स्वप्न भी ऐसे आते हैं, यह मैं। आहा...हा...! भूला, वह भी पूरी भींत को भूला है न ! कहो ! यह अजीवतत्त्व की भूल है।

नीचे भाईने - ग्रन्थकारने अर्थ करनेवाले लिखा है - '**आत्मा अमर है; वह विष, अग्नि, शस्त्र-अस्त्र या दूसरे किसी से नहीं मरता... 'नैनं छिदन्ति**'' आता है न यह ? '**नया उत्पन्न नहीं होता। मरण (वियोग) तो मात्र शरीर का ही होता है।**' मरण नाम शरीर का वियोग है - इसका नाम मरण कहा जाता है। आत्मा को आत्मा का वियोग नहीं होता। आत्मा को आत्मा का वियोग होता है ? अखण्डानन्द प्रभु चैतन्यदल ... समझ में आया ? ऐसा का ऐसा

पूर्वजन्म से यहाँ आवे और यहाँ से अन्यत्र जाए तब शरीर यहाँ पड़ा रहे और वहाँ गया। शरीर के कारण आत्मा को जन्म मरण मानना, यह बड़ी अजीव की भूल है।

अब, आस्रव की भूल - '**जीव अथवा अजीव कोई भी परपदार्थ आत्मा को कुछ भी सुख-दुःख, बिगाड़-सुधार नहीं कर सकते, तथापि अज्ञानी ऐसा नहीं मानता। पर में कर्तृत्व, ममत्वरूप...**' पर में कर्तृत्व, ममत्वरूप '**मिथ्यात्व...**' अर्थात् ? पर का कार्य कर नहीं सकता, तथापि पर का कार्य करूं- ऐसी मान्यता या ममता मिथ्यात्व की है। मिथ्यात्व की ममता है, विपरीत श्रद्धा (है।)

'**और राग - द्वेषादि शुभाशुभ आस्रवभाव प्रत्यक्ष दुःख देनेवाले है...**' वह प्रगट का अर्थ किया है। शुभ और अशुभ पुण्य-पाप के भाव; यह दया, दान, भक्ति, व्रत पूजा का शुभभाव, वह दुःखरूप है। आहा...हा...! आवे सही, होवे भले ही, पाप से बचने के लिए (आवें) परन्तु वे शुभभाव, अमृत को लूटकर उत्पन्न हुए हैं। आहा...हा...! कभी घर देखने के लिए निवृत्त नहीं हुआ। 'न देखा अपना रूप' नहीं आया ? पहले आ गया है। है ? चौदहवीं गाथा आ गयी है। 'न देखा अपना रूप।' अपना रूप आया था, देखो ! '**कैसे रूप लखे आपनो -**' पहली ढाल की १४ वीं (गाथा) को अन्तिम लाईन है।

बलपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणीरत रह्यो;
अर्धमृतकसम बूढापनो, कैसे रूप लखै आपनो।।१४।।

अपना स्वरूप अखण्डानन्द ज्ञान है। इसमें रच-पच गया। फुरसद कब हैं ? मैं कौन हूँ ? अन्दर देखने, अन्दर ढूढने, अन्दर अवलोकन करने, खोजने को निवृत्त कब होगा ? कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया ? इन सब अवस्थाओं को अपनी माने और उसी-उसी में संभाल करने में रचपच गया। उसमें अन्दर यह आत्मा कौन चीज़ है। क्या है ?

कहते हैं कि, यह शुभाशुभभाव बन्ध के ही कारण हैं। अभी बन्धतत्त्व की भूल नहीं बतानी है; यहाँ (तो) आस्रव की भूल बतानी है, परन्तु यह पुण्य-पाप के भाव बन्ध के कारण हैं, दुःख के कारण हैं, उन्हें सुखरूप मानता है - इतना बताना है। बन्ध का (स्वरूप) बाद में आयेगा। '**बन्ध**

के ही कारण हैं, तथापि अज्ञानी जीव उन्हें सुखकर जानकर सेवन करता है।' भाव का सेवन करता है। समझ में आता है ? शुभ और अशुभभाव। यह विषय भोग, प्रतिष्ठा-कीर्ति, सुनने से इसे अशुभभाव हो, (उसमें) मजा माने, चैन... चैन...चैन... (लगे)। पाँच हजार या पच्चीस हजार मिले, वहाँ (कहता है) हलुआ का गर्म पानी रखो ! हर्ष मानता है। यह हर्षभाव, यह पापभाव है, (उसमें) मजा मानता है। क्या होगा इसमें ? भाई ! अरे... अरे..! कठिन बात। घर में पच्चीस लोग हों और पाँच लाख कमाय तो सब प्रसन्न होते हैं, लो ! लड़का कर्मी हुआ है।

मुमुक्षु :- कर्मी न ? धर्मी नहीं न !

उत्तर :- वह फिर अलग (बात) परन्तु यह तो कर्मी हुआ है अर्थात् वह जो अशुभभाव करता है और उसमें मजा मानता है - ऐसा, इतना कहना है। भाई ! क्या होगा इसमें ? क्या कहते हैं ?

शुभ और अशुभभाव, यह पुण्य-पाप के भाव दुःख के देनेवाले हैं। प्रत्यक्ष दुःख देनेवाले हैं। प्रत्यक्ष, हाँ ! यहाँ तो ग्रन्थकार ने स्वयं बात (-शब्द) प्रयोग की है - प्रगट दुःख देनेवाले। पता नहीं (इसे), वहाँ कहाँ शान्ति थी ? - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! शान्ति तो भगवान आत्मा में है। उसमें से बाहर निकलकर शुभाशुभभाव में प्रगट दुःख देनेवाले है और '**बन्ध के ही कारण है, उन्हें अज्ञानी जीव सुखकर जानकर सेवन करता है।**' है न ? '**सेवत गिनत चैन।**' यह चैन की व्याख्या की। मजा है, अभी तो हमारे मज़ा है। आहा...हा...! खाने-पीने के साधन, बंगला और गाड़ी सब अनुकूलता है। उसमें भाव होता है पाप और मानता है कि हमको मज़ा है। अबी सुखी है, सुखी हैं, बादशाही है।

मुमुक्षु :- एक माँगे और इक्कीस मिले...

उत्तर :- यह तो पूछो, इस भाई को। धूल में भी सुख नहीं है। फँसे एक में से दूसरे में, दूसरे में से तीसरे में फँसता है, वह राग, राग, राग, राग, राग, राग... समझ में आया ? आहा...हा...! कठिन बात, भाई ! ऐसा (हो) तब इसमें हमें करना क्या ? अब धर्म किस प्रकार करना ? अच्छे साधन होवे तो धर्म होता है। अच्छे साधन न हो तो धर्म होता है ? साधन अच्छे-बुरे कहना किसे ? कहते है। पर के साधन को अच्छा-बुरा मानना, वही मूढ़ जीव है। पर के साधन का आत्मा से सम्बन्ध क्या है आहा...हा...!

'**और शुभभाव भी बन्ध का ही कारण है...**' कारण की बात है, हाँ ! आस्रव की बात है। वह '**आस्रव है...**' पुण्य-दया, दान, व्रत के शुभभाव। '**उन्हे हितकर मानता है। परद्रव्य, जीव को लाभ-हानि नहीं पहुँचा सकते, तथापि उन्हें इष्ट-अनिष्ट मानकर उनमें प्रीति-अप्रीति करता है...**' परपदार्थ, आत्मा को लाभ - हानि करनेवाले नहीं है, वे तो ज्ञेय है।

'**मिथ्यात्व, राग-द्वेष का स्वरूप नहीं जानता...**' विपरीत मान्यता; इसे इस मान्यता का पाप ही दिखायी नहीं देता। किसी की ... मर जाए, पाँच-पचास लाख इकट्ठा करे तो यह पाप करता है - ऐसा लगता है; समझ में आया ? परन्तु यह सम्पूर्ण आत्मा अखण्डानन्द शुद्ध है, उसे भूलकर, मुझे पर से सुख-दुःख होता है- ऐसा मानता है, वह महापाप है। उस पाप को नहीं पहिचानता। यह क्या पाप ? उसमें क्या जीव मर गया ? बापू ! ज्ञाता-दृष्टा चैतन्य, उसे पर की अनुकूलता से सुख अथवा शुभभाव में सुख माना, वही मिथ्यात्वभाव है। क्योंकि मिथ्यात्व और राग-द्वेष का स्वरूप नहीं पहिचानता। इसमें क्या राग हुआ ? इसमें क्या राग हुआ ? - ऐसा कितने ही कहते हैं। यह भगवान की भक्ति करें, इसमें क्या राग हुआ ? लो ! हमारे तो वीतरागता चाहिए है।

मुमुक्षु :- यह तो बहुत पुरानी बात है।

उत्तर :- हाँ, परन्तु ऐसा कहते है न ? सब मानते हैं। (संवत्) १९९५ में वहाँ 'जूनागढ' गये थे न ? वहाँ एक था। हम भगवान के भक्ति (करते हैं), हमें राग नहीं चाहिए, हमें तो वीतरागता चाहिए है। लो ! तुम कहते हो कि भगवान कि भक्ति, वह राग है, परन्तु हम कहते हैं कि हमारे राग है कहाँ ? हमारे राग करना कहाँ है ? परन्तु तू भक्ति करे यही राग है। सुन अब ! समझ में आया ? परन्तु वह राग को स्वयं सुख का कारण मानता है। बन्ध के कारण को, अबन्ध परिणाम को न जानकर बन्ध के कारण को सुख माने तो अबन्ध कारण के परिणाम को नहीं जानता। आहा...हा...! समझ में आया ? ऐसा मानता है कि हमारे (राग) कहाँ चाहिए है ?

एक व्यक्ति कहता था, लो ! एक बार (संवत्) १९९७ में वकील कहता था। इसमें परजीव की दया के भाव (हुए) उसमें क्या पाप आया ? उसमें राग कहाँ आया ? उसमें राग कहाँ आया ? - ऐसा प्रश्न किया था, लो ! भाई ! ज्ञानस्वरूप वह अपना लक्ष्य छोड़कर अन्य के विषय का लक्ष्य

करके विषय बदलता है, वही राग है भाई ! यहाँ कहा न ? राग के स्वरूप को नहीं पहिचानता। राग-द्वेष के स्वरूप को नहीं पहिचानता। ऐसे की परजीव की दया पालन करें, उसमें राग कहाँ आया ? भाई ! तू ज्ञानस्वरूप है, उसका विषय तो ज्ञान, स्वविषय है। उसके बदले यह (है), दूसरे का भाव था, उसमें से ऐसा बदला, ऐसा बदला यह बदलना वही अन्दर राग है। आहा...हा...! उसमें क्या राग आया ? दान में क्या राग आया ? अमुक में क्या (राग) आया ? भाई ! आत्मा-स्वविषय ज्ञानस्वरूप है। उसके विषय को छोड़कर, जितना परविषय में लक्ष्य बदलता है, फिर द्वेष हो या राग, परन्तु विषय बदलता है, यह ठीक नहीं; यह ठीक - यह सब राग है। आहा...हा...! कुछ समझ में आया ? राग कैसे होता है और राग का क्या स्वरूप है ? - इसे नहीं जाने, यह आस्रव की बड़ी भूल है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- यह कहा न ! पहिचानता नहीं। वस्तु जो चैतन्य है, वह तो इसका स्वविषय तो अन्दर है और देखने के लिए यह विषय बदलता है तो बदलता है। यह क्या है ? विकल्प बदलता है, राग बदलता है, अन्दर विकार बदलता है। विकार बदलता है, फिर राग हो या द्वेष हो परन्तु ऐसा बदलता है - यह... यह... यह... यह... हिंसा का भाव था, फिर दया का भाव (आया), इसलिए विषय बदलता है। विषय बदले अर्थात् अन्दर राग बदलता है ज्ञान बदले तो ज्ञाता होकर बदले। उसमें पर का विषय आया ही नहीं।

यहाँ तो जरा ऐसा आया न कि '**मिथ्यात्व, राग-द्वेष का स्वरूप नहीं जानता...**' जानता ही नहीं। यह शास्त्र पढ़ने में क्या राग आया ? ऐसा कोई कहते हैं, लो ! बापू ! यह लक्ष्य है न ऐसे, ऐसे जो लक्ष्य है, उसमें से ऐसे लक्ष्य गया है, वह विषय बदलता है। आहा...हा...! है ? कुछ समझ में आया ? राग-द्वेष का विषय पर होता है; राग-द्वेष का विषय स्व नहीं होता; इसलिए जो यह विकल्प ऐसे चक्कर खाता है, वह सब विकार है; इसलिए जो यह विकल्प ऐसे चक्कर खाता है, वह सब विकार है; फिर शुभ का चक्र बदले या अशुभ का बदले, दोनों ही आस्रव हैं। कुछ समझ में आया ? ऐसे आस्रवतत्त्व को नहीं पहिचानता।

'**परपदार्थ मुझे सुख-दुःख देते हैं...**' ऐसा मानता है। अब हैरान हो गये। इतने वर्ष से

दुःख और इतने महीनों से पलंग पर पड़े हैं ! क्या है परन्तु ? यह तेरे विकल्प दुःखरूप है; वह परवस्तु दुःखरूप नहीं है। पर को सुख-दुःखरूप मानता है; '**अथवा राग-द्वेष मोह कराते हैं...**' परपदार्थ मुझे राग-द्वेष मोह कराते हैं। समझ में आया कुछ ? भूल है, विभाव भी परलक्षी निज परिणमन है। स्वभाव स्वलक्षी निज परिणमन है। उसमें दूसरे के कारण कुछ नहीं है। आहा...हा...! कुछ समझ में आया ? '**ऐसा मानता है - यह आस्रवतत्त्व की भूल है।**' लो ! यह एक गाथा में अजीव और आस्रव की दोनों भूलें कहीं।

अब, छठवीं गाथा।

बन्ध और संवरतत्त्व की विपरीत श्रद्धा

शुभ-अशुभ बन्धके फल मंझार, रति-अरति करै निजपद विसार;
आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखै आपको कष्टदान।।६।।

अन्वयार्थ :- [मिथ्यादृष्टि जीव] (निजपद) आत्मा के स्वरूप को (विसार) भूलकर (बन्धके) कर्मबन्ध के (शुभ) अच्छे (फल मंझार) फल में (रति) प्रेम (करै) करता है, और कर्मबन्ध के (अशुभ) बुरे फलसे (अरति) द्वैष करता है; [तथा जो] (विराग) राग-द्वेषका अभाव [अर्थात् अपने यथार्थ स्वभावमें स्थिरतारूप[१] सम्यक्चारित्र] और (ज्ञान) सम्यग्ज्ञान [और सम्यग्दर्शन] (आतमहित) आत्मा के हित के (हेतु) कारण हैं (ते) उन्हें (आपको) आत्मा को (कष्टदान) दुःख देनेवाले (लखै) मानता है।

भावार्थ :- (१) बंधतत्त्व की भूलः अघातिकर्म के फलानुसार पदार्थोंकी संयोग-वियोगरूप अवस्थाएँ होती हैं। मिथ्यादृष्टि जीव उन्हें अनुकूल-प्रतिकूल मानकर उनसे मैं सुखी-दुःखी हूँ ऐसी कल्पना द्वारा राग-द्वेष, आकुलता करता है। घन योग्य स्त्री,

१. अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य ही आत्मा का सच्चा स्वरूप है।

पुत्रादिका संयोग होने से रति करता है; रोग, निंदा, निर्धनता, पत्र वियोगादि होने से अरति करता है; पुण्य-पाप दोनों बन्धनकर्ता है, किन्तु ऐसा न मानकर पुण्य को हितकर मानता है; तत्त्वदृष्टि से तो पुण्य-पाप दोनों अहितकर ही है; परन्तु अज्ञानी ऐसा निर्धाररूप नहीं मानता - वह बन्धतत्त्वकी विपरीत श्रद्धा है।

(२) संवरतत्त्वकी भूल :- निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही जीव को हितकारी है; स्वरूप में स्थिरता द्वारा रागका जितना अभाव वह वैराग्य है; और वह सुख के कारणरूप है; तथापि अज्ञानी जीव उसे कष्टदाता मानता है - यह संवरतत्त्व की विपरीत श्रद्धा है। ।।६ ।।

'**बन्ध और संवरतत्त्व की विपरीत श्रद्धा।**' देखो ! इसमें आस्रव का दृष्टान्त क्या दिया है ? देखो ! एक सेठ है न ? क्या है यह ? तिजोरी। तिजोरी बतायी है न ? तिजोरी है न ? भाई ! क्या है ? तिजोरी में पैसा रखता है या निकालता है - यह सब राग है, ऐसा कहना है। है न इसमें ? भाई ने छपाया है न सब ? (उन्हें) पता है। तिजोरी है न यह ?

तिजोरी में ऐसा बताया है कि पैसा रखना। परन्तु वास्तव में रखना और लोगों को देना या निकालना - यह सब राग है। तिजोरी में 'मेरे' मानकर रखे अथवा यह मैं रखता हूँ - ऐसा भाव, वहभी पाप-आस्रव है और किसी को देने के लिए निकालने का भाव, वह पुण्य-आस्रव है, परन्तु दोनों आस्रव हैं। कहो, समझ में आया ? देखो ! यहाँ एक सेठ बैठा है। सिरहाना है, सिरहाना ... क्या कहलाता है तुम्हारा ? इसे तकिया कहते हैं। यह तकिये पर ऐसे बैठा है, उघाड़ शरीर, ऐसा कि वस्त्र ओड़ने का ठिकाना नहीं। इतनी पैसा... पैसा... पैसा... पैसा... कमाने, रखने, संग्रह में लवलीन हो गया है। है ?

मुमुक्षु :- है।

उत्तर :- नहीं, नहीं, वह व्यवस्थित करने में। यह व्यवस्थित .... और जो पैसा हो तथा गुप्तरीति से पैसा रखना हो तो मजदूर को अन्दर नहीं ले जाए। एक-एक हजार की लाख, दो लाख थेली हो। कहा था न एकबार ? एक सेठ का पुत्र था। नाम-ठाम नहीं देते। वह 'पूना' में पढ़ता था। उसके पिता तीन भाई साथ थे। (लड़का कहता), बापूजी ! महीने के दो सो रूपये खर्च के लिए भेजना, जेब खर्च; और दूसरा रसोई का खर्च वह तो है ही, वह तो तुम भेजते ही हो परन्तु दो सौ भेजना। यदि आपको ठीक न लगता हो तो चाचा के नाम में नहीं परन्तु तुम्हारे नाम से भी भेजना। क्यों ? कि हम गृहस्थ के यहाँ पैदा हुए हैं, गरीब के घर पैदा नहीं हुए और जब घर में लाख, दो लाख थेलियाँ आती है, तब मजदूर बाहर तक रख जाते है और फिर हम उठाकर कमरे में रखते हैं। उस दिन नगद रुपये थे न ? रोकड़ थे। समझे न ? अब तो तुम्हारे थोक सब हो गये। क्या कहलाता है यह ? नोट हुई। उस दिन रोकड़ा नगद (थे।) आदमी को अन्दर नहीं ले जाए। जिस जगह तिजोरी हो, उसमें उसे नहीं ले जाए, बाहर रखे। दरवाजे में बाहर दूसरा दरवाजा (हो), वहाँ (रखे) फिर घर के लड़के उठाकर वहाँ रखे। कड़ी तोड़े अन्दर। गृहस्थ के लड़के दस-दस लाख के आसामी हो तब भी, हाँ, लिखा था, बापा ! यह पैसा छोड़े उस समय हमें बल पड़ता है, इसलिए तुम्हें ठीक पड़े, चाचा ने नाम से न आवे तो तुम्हारे नाम में लिखकर (भेजना।) खर्च के दो सो (रुपये) चाहिए। हम गरीब के घर पैदा नहीं हुए, जन्मे तब घोड़ागाड़ी के घर पैदा हुए है। भाई ! परन्तु यह तो पाप के परिणाम हैं।

यहाँ तो यह कहना है, समझ में आया ? परन्तु उस लड़के को भाव होते हैं, वह पाप का है, ऐसा यहाँ कहना है। वह तो आस्रव है। यहाँ तो तिजोरी की बात नज़र में आयी, इसलिए जरा (बात की)। तिजोरी में अन्दर कौन रखने जाए ? वह तो यहाँ सब (बदल गया।) वह तो घर के लोग रखने जाए-ऐसा कहना है। गहराई में दूर हो। दो-दो लाख पड़े हों, पाँच-पाँच लाख की थैलियां (पड़ी हों), हजार-हजार रोकड़, हाँ ! नगद ! रूपये रोकड़। 'सायला' में दालान में रूपये की थैलियाँ पड़ी थी।

'सायला' दरबार थे और यह सेठ थे। सेठ परिवार था। उनका लड़का नहीं था ? हमारे साथ घूमता। गरीब व्यक्ति हो गया था। उसके स्वयं के विवाह के समय कहते थे। नाम भूल गये।

बिचारा हमारे साथ घूमता, हाँ ! (संवत्) १९८१ के साल में। अस्सी वर्ष की उम्र। उसके विवाह में वहाँ उसका विवाह जब था, वह दरबार आये, थैलियाँ भरी हुई। दरबार थे और दरबार का छोटा लड़का था। दालान में रुपये की थैलियाँ (पड़ी थी), रुपये की थैलियां ! तब तो रोकड़ था न ! थैलियाँ... थैलियाँ ! जैसे गुण भरे ऐसे।

राजकुरमार कहता है, पिताजी ! बापूजी ! यह क्या सेठ के घर में यह क्या है ? तो राजा कहता है, भाई ! अपने सेठ पैसेवाले है और सेठ को अपना भरोसा है। इसमें से कुछ जाए तो अपने को घर का देना पड़े, इसलिए खुल्ला पड़ा है। वे राजा ऐसे थे। समझ में आया ? उस विवाह के समय राजा आये थे, फिर अंजली (दोनों हथेलियों द्वारा रचित) भर-भर खारेक (खजूर सूखा हुआ) पूरी बोरी भर के... 'लीमड़ी'में उपाश्रय है। वह राजकुमार पूछे तो राजा ऐसा बोला। वे रूपये खड़खड़े तो सही न ! थैलियाँ हाँ ! रूपयों की भरी हुई, बोरियाँ भरी हुई। तब कहाँ तिजोरी-फिजोरी थी। बापूजी ! यह क्या ? (तो कहा) अपने सेठ पैसेवाले हैं और इन्हे अपना विश्वास है। यदि इसमें से कुछ जाए तो अपनी तिजोरी में से देना पड़े - ऐसा इन्हें भरोसा है। इन्हे - राजा को ईर्ष्या नहीं थी - ऐसा कहना है। ईर्ष्या नहीं थी। अपने सेठ ऐसे पैसेवाले हैं। समझ में आया ? अब ठीकठाक करने लगे तो अंदर दूर गए और अब तो यह आपके कागज-रद्दी (हो गए) इसलिए वह कहता है कि इतना खर्च देना पड़ेगा। हम पाप के भाव, मजदूरी बहुत करते हैं। लड़के को शिक्षा मिलती है।

यहाँ तो कहते है कि देने-लेने का भाव बन्ध दोनों का कारण है। ऐसी बात कहनी है। देखो न, यह दृष्टान्त दिया है न, इस पर से जरा (बात की)। इन्हे तो रखने के लिए दिया होगा, मैं तो अन्दर खेंचने के लिए (कहता हूँ)। दान देने के लिए निकाले तो भी शुभभाव है। समझ में आया ? अब, छठवीं गाथा :-

'**बन्ध और संवरतत्त्व की विपरीत श्रद्धा -**'

शुभ-अशुभ बन्धके फल मंझार, रति-अरति करै निजपद विसार;
आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखै आपको कष्टदान।।६।।

देखो ! आया। सब जगह यह आता है। क्या कहते हैं ? '**(मिथ्यादृष्टि जीव)**' अज्ञानी

'**(निजपद)**' अर्थात् '**आत्मा के स्वरूप को भूलकर...**' भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु है। जिसके स्वभाव में तो अकेली शान्ति और आनन्द पड़ा है। उसकी नजर करने पर निधान में से आनन्द झरता है। ऐसा भगवान आत्मा है, उसे नहीं पहिचानता। जिसके सामने देखने से समता प्रकट होती है और पर के सामने देखने से विषमता प्रगट होती है। कुछ समझ में आया ?

ऐसा भगवान आत्मा निजपद, ज्ञानानन्द शुद्ध आनन्दप्रभु, उसे भूलकर, उसका उसे पता नहीं, है कि मेरे स्वभाव में निजपद में क्या है। उसे भूलकर '**कर्मबन्ध के अच्छे फल में प्रेम करता है...**' समझ में आया ? पूर्व का कोई पुण्य बंधा हुआ हो और उसका अनुकूल फल देखर उसमें प्रेम करता है। हमें बहुत बादशाही है, सामग्री की बहुत सुविधा है, बहुत सुविधा है। इस शुभराग के अनुकूल फल को ठीक माननेवाले बन्ध की श्रद्धा को भूलते हैं। वह बन्ध पुण्य का हो या पाप का (हो), दोनों बन्ध अहितकर हैं। ऐसा न मानकर शुभभाव के फलरूप से बँधे हुए पुण्य, उसके फलरूप से धूल आदि सामग्री-स्त्री, पुत्र, परिवार की सुविधा (मिले), उसमें ठीक मानता है। '**अच्छे...**' है न ? '**(शुभ) फल में प्रेम करता है...**' प्रेम करता है, प्रेम।

'**और कर्मबन्ध के बुरे फल में द्वेष करता है...**' यह अघाति का फल, उसके पाप बाँधे- शरीर में रोग आवे, निर्धनता आवे- गरीबी आवे, बांझपना, कुँवारापना हो, शरीर में रोग होवे, जन्म से ही रोग हो - उन्हें बुरे मानता है। बन्ध के प्रतिकूल फल खराब और अनुकूल फल अच्छे - ये दो चीजें है ही कहाँ ? कहेत हैं। यह तो संयोग की चीज़ है, उसमें यह अनुकूल और यह प्रतिकूल; यह अच्छा और यह बुरा-ऐसा मानना यह बन्धतत्त्व की भूल है। अबन्धतत्त्व जो निजपद, सामने ऐसा कहा। समझ में आया ? '**शुभ-अशुभ बन्ध के फलमझार, रति-अरति करै निजपद विसार;...**' निजपद तो अबन्धस्वरूप है। समझ में आया ? आहा...हा...! यह बारीक चिमटे से भूल पकड़ाई है। है ? आहा...हा...!

कहते हैं, पाप का फल आवे, तब द्वेष करे कि अर..र..र..! यह कहाँ (आया) ? और पुण्य का फल आवे, तब प्रेम करता है। भगवान ! तुझे बन्धतत्त्व का पता नहीं है। बन्धतत्त्व तो आत्मा के अबन्ध परिणाम से अत्यन्त विरुद्ध भाव से हुआ तत्त्व बन्ध है। उस बन्ध के एक भाग को ठीक

और दूसरे भाग को अठीक (मानना), यह तेरी बन्धतत्त्व की भूल है। आहा...हा...! समझ में आया ?

भगवानने तो आठ कर्मो को विषवृक्ष का फल कहा है। ज़हर के वृक्ष का फल ! चिल्लाते है न यह लोग ? देखो न ! मीठास है न ! है न अपने, देखो अन्दर। 'जिस पुण्य की रुचि है, उसे जड़ की रुचि है।' ... उसे आत्मा के धर्म की रुचि नहीं। आहा...हा...! भगवान आत्मा बन्धरहित, वह तो अबन्ध स्वरूप है। आत्मा अर्थात् मुक्तस्वरूप; उसमें आस्रव या कर्म है ही नहीं, इसलिए मुक्त स्वरूप ही आत्मा है अथवा अबन्ध परिणाम को उत्पन्न करे-ऐसा मुक्त स्वभाव आत्मा का है। बन्ध के परिणाम कारणरूप और उसके फलरूप से बन्ध करे यह आत्मा के स्वभाव में है ही नहीं। आहा...हा...! कुछ समझ में आया ? है न अन्दर ? पुस्तक-बुस्तक लिया या नहीं ? कल तो लेकर नहीं आया था ? पता पड़ता है या नहीं ? सवेरे (चलता) है। सवेरे चलेगा, अभी थोड़े समय चलेगा, लम्बा तो नहीं चलेगा; चले तब तक तो लाना या नहीं ? राजा, तलवार घर रखता होगा ? बहार निकले तब कन्धे पर रखता है। पुस्तक तो साथ में चाहिए या नहीं ?

'कहते हैं, **कर्मबन्धन के बुरे (फल) मैं द्वेष करता है...**' यह इतनी बन्धतत्त्व की भूल की व्याख्या है। समझ में आया ? किसी रोग की प्रतिकूलता आवे तो द्वेष.. द्वेष (करने लगता है) और कोई अनुकूलता आवे (तो), हर्ष, उल्लास, उल्लास मुँह पर (दिखता है।) भाई ! यह अनुकूल-प्रतिकूल दोनों बन्ध के फल (हैं), उनमें एक अच्छा, (एक) बुरा है ही नहीं। आहा...हा...! इस बन्ध के फल को, शुभ को अच्छा माने तो तूने भगवान अबन्ध परिणामी चैतन्य को झूठा माना। आहा...हा...!

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- दुनिया तो ऐसी ही होती है न ! पागलों में पागलों की ही बातें होती है। दुनिया तो पागल है।

मुमुक्षु :- हर्ष के समय हर्ष तो करे न ?

उत्तर :- परन्तु हर्ष किसका ? हर्ष के समय तो आत्मा में आनन्द है, उसका हर्ष करे या इसमें हर्ष करे ? किसका हर्ष ? पुत्र का विवाह हो, उसमें दस लाख की पूँजी हो, स्वामीने कहा हो कि इसबार लाख खर्चना है, हाँ ! एक लाख बराबर ठीक से, खर्चना हो तो तुझे छूट है, जा ! फिर

पीहरवालों को बुलावे और अमुक को बुलावे और उसे बुलावे, बस ! आ..हो..हो...! आवाज बैठ जाए तो भी इसे शांति नहीं आती, तब भी बोलकर अन्दर जबरदसती होंश करता है। क्या है परन्तु यह ? किसका लाभ ? अग्नि का। अग्नि का लावा होता है, नहीं पता ? यह परदेश में जो ज्वालामुखी निकलता है। बापा ! यह राग के लावा की मीठास, बन्ध में अनुकूलता की मान्यता, मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। कठिन बात, भाई ! यह तो सादी भाषा में रखा है। सर्वथा सादी हिन्दी भाषा में है। गागर में सागर भर दिया है। कहो, समझ में आया ? इसमें कोई शास्त्र, बहुत सूक्ष्म या 'परमात्मप्रकाश' या 'समयसार' (जैसा नहीं है।)

मुमुक्षु :- इसमें निकालते हैं।

उत्तर :- परन्तु इसमें है न, देखो न ! क्या कहते है ? देखो ! '**शुभ-अशुभ बन्ध के फल मझार, रति-अरति करै निजपद विसार;**' भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति ज्ञानस्वरूप है, उसे भूलकर शुभ बन्ध में हर्ष करता है, रति करता है; अशुभबन्ध बँधे, उसमें अरति करता है। अरे...! तुम्हें बन्ध हुआ, पुण्य का बन्ध हुआ... 'समयसार'में आता है न ? परजीव की दया में पुण्यबन्ध, पर की हिंसा में पापबन्ध। पुण्यबन्ध होता है न ? परन्तु वहाँ तो गाली देते है कि परजीव की दया में अहंकार है न ? वहाँ मिथ्यात्वसहित का पापबन्ध है। उसके साथ वह घाति का पाप है, अघाति का ज़रा पुण्य है। किसमें प्रसत होता है ? ऐसा कहते है। पुण्य है न उसमें ? हमारे पुण्य तो बँधेगा न ? परन्तु पुण्य बँधता है न ? तेरा अबन्धस्वरूप है, उसे ऐसे बन्ध में तुझे हर्ष किसका ? कुछ समझ में आया ? ऐसा बन्धन होगा और फिर बड़ा अच्छा फल मिलेगा-चक्रवर्ती होगा वासुदेव, और बलदेव और अमुक राजा होगा और सेठ होगा यह कहते हैं, शुभबन्ध में जिसे रति और प्रेम है, (वह) बन्धतत्त्व को भूला है। कोई बन्ध अच्छा है ही नहीं।

अबन्ध परिणाम भगवान आत्मा, मुक्त चैतन्यस्वरूप, उसकी दृष्टि, ज्ञान, शान्ति-ऐसे अबन्ध परिणाम (होवें) वे अच्छे हैं। इसके अतिरिक्त कोई बन्ध का कारण और बन्धरूप भाव या बन्धतत्त्व, वह अच्छा नहीं है और बन्ध का फल एक भी अच्छा नहीं है। अद्‌भुत बात, भाई ! ओ..हो..हो...! यह तो सात तत्त्व की भूल की व्याख्या चलती है। कुछ समझ में आया ? मिथ्यादृष्टि की भूल। तथा त्याग तो फिर, मुनिपना और वह तो कहीं रह गया। यह तो अभी सात

तत्त्व की भूल में अटका, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे धर्म-बर्म, त्याग-बाग नहीं होता। ओ..हो..हो..! यह बन्ध(की) बात की।

'**तथा जो (विराग)...**' अर्थात् '**राग-द्वेष का अभाव...**' अर्थात् चारित्र। समझ में आता है ? संवर.. संवर है न यह ? यह संवर है। आत्मा में राग-द्वेष का रूक जाना, वह संवरभाव है। पुण्य-पाप के विकल्प रूकना और आत्मा में से शान्ति प्रगट होना, वह संवरतत्त्व है। संवरतत्त्व कहो या सम्यक्चारित्र कहो; सम्यक्चारित्र कहो या विराग कहो। यह सम्यक्चारित्र जो आत्मा का स्वभाव शुद्ध चैतन्यमूर्ति, उसमें स्थिर होना, उसका नाम सम्यक्चारित्र (है)। कहते हैं, वह '**हित का (हेतु)...**' है। '**उसे दुःख देनेवाला मानता है।**'

❋

जैसे मुसाफिर एक गाँवसे दूसरे गाँव जाता है तो पाथेय साथ लेकर जाता है, तो दूसरे भवमें जानेके लिये भी कुछ कलेवा चाहिए या नहीं ? श्रद्धाज्ञानरूपी पाथेय साथ लेकर जाना चाहिए। पत्नीकी ओर देखे तो पाप, पुत्रकी ओर देखे तो पाप, लक्ष्मीकी ओर देखे तो पाप, पर ओर देखते सभी पाप ...पाप और पाप है । अरे ! तुझे कहाँ जाना है ? राग और मैं एक हूँ' ...क्या ऐसा मिथ्यात्वका कलेवा साथ लेकर जाना है ? मैं रागसे भिन्न ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ...ऐसा कलेवा साथ ले जाए तो धर्ममार्गमे बढ़नेमें यह काम आएगा। अन्तरके असंख्य प्रदेशोंमें गहरे, अति गहरे ध्रुव तलको थाह लेना है । (पर्यायको ले जाना है ।) यह तो धीरोंका-वीरोंका काम है । ९०